

## दिल की खोज

माझाँद में सिंधु नदी के तटपर एक दिन श्रीभक्तकोकिलजी बाबा देवीदास, श्रीटहल्यारामजी और भक्त कँवररामजी विराजमान थे । बाबा देवीदास जी ने श्री भक्तकोकिलजी से पूछा- स्वामी जी एक फकीर की वाणी है कि-

तेरी गली में आकर खोये गये हैं दोनों ।

दिल तुझको ढूँढता है, मैं दिल को ढूँढता हूँ ॥

इसका भाव क्या है ? उसका दिल किस गली में खो गया है ? वह उसे क्यों ढूँढ रहा है ?

श्रीस्वामीजी ने कहा - “प्रेमी पुरुषों की चाल अटपटी है । उसे वे ही जानते हैं । दूसरों की सूझ-बूझ काम नहीं करती, यह फकीर प्रेम की टेढ़ी मेढ़ी गली में घूमते फिरते विरह की साँकरी किन्तु लम्बी खोर में जा पहुँचे हैं । विरह की पहुँच बहुत गहरी है । वह दिन की छिपी हुई तहों को उधेड़ कर बाहर ले आता है । प्रियतम ने कितनी गहरी चोट की है, कैसा अचूक लक्ष्य वेध किया है ? वे दिल का कतरा नहीं, दरिया ही चुरा ले गये हैं । इसका पता विरह में ही चलता है । विरह कडुआ तो है परन्तु उसमें मिठास है तुरा तो यह है के वे इतनी खूबी के साथ दिल को चुराते हैं कि दिल को भी पता नहीं चलता कि मेरी चोरी की जा रही है । वह समझता है कि मैं चोर को ढूँढने पकड़ने जा रहा हूँ, परन्तु इसी गफलत में वे कमाल कर

गुजरते हैं । जब बेचारा प्रेमी अपने बे दिल प्राण को, रीते तन बदन को देखता है तब दिल को ढूँढने के लिये दौड़ पड़ता है । कभी वह सोचता है कि दिल मिलेगा तो दिलबर भी मिल जायेगा । कभी वह प्यारे को ललचाता है कि 'दिल तो ले गये, अब जान भी ले जाओ ।' उसके पागलपन को देखकर कोई पूछता है- “अरे मस्तराम, क्या कर रहे हो ? वह कहता है “अपने दिल को ढूँढ रहा हूँ ।”

इस प्रकार प्रिया-प्रियतम के विरह समाज में खोये हुए दिल को ढूँढना भी अत्यन्त आनन्ददायक है । कोटि इन्द्र के वैभव सुख से भी अधिक है । इसमें स्वाद है; परन्तु भोग नहीं । स्व है पर स्वार्थ नहीं । सुख हो चाहे दुःख, स्नेह की लौ जगती रहती है । इसमें दर्द है पर आह नहीं ।

अब प्रश्न यह है, यह चोरी कैसी ? यह ले भागना क्यों ? उन्हीं की तो चीज है । वे सामने ही उलट पलट कर जैसी मौज हो वैसे अपने काम में क्यों नहीं लाते ?

बिना विरह के मिलन का मज़ा नहीं मिलता । मिलन तो नित्य है, रोज़-रोज़ की चीज़ है, उसमें क्या नया पन ? नवीनता तो तब है जब आँख मिचोनी हो, लुकाछिपी हो, ढूँढना हो, पकड़ना हो, ! इसीलिये यह माखन चोरी का खेल खेला जाता है ।

प्रेमी इस चोरी और सीनाजोरी को न समझते हों यह

बात नहीं । जब एक ही गाँव में से दो स्त्री पुरुष गायब हो जाते हैं, तो लोग अनायास ही समझ जाते हैं कि यह उसी पुरुष की गड़बड़ी है । वैसे ही, दिल की दूती प्रियतम को ढूँढकर लाने के लिये जाती है और स्वयं ही खो जाती है, तब चतुर पुरुषों को यह समझने में देर नहीं लगती कि यह उनकी ही कारस्तानी है । फिर भी प्रेमी जब ढूँढने के लिये निकलता है तो रास्ते में प्रियतम मिलते हैं । वे प्रेमी के दिल को अपने दिल में छिपाकर पूछते हैं कि ‘क्यों जी तुम मुझे क्यों ढूँढ रहे हो ?’ प्रेमी कहता है—  
“राम-राम ! मैं आपको क्यों ढूँढने लगा ? आपसे मेरी क्या गरज है ? मैं तो अपने दिल को ढूँढता हूँ ।” प्रियतम कहते हैं—  
“कहीं तुम्हें मुझपर शक-शुबहा तो नहीं है ।” प्रेमी ने कहा—  
“राम कहिये ! मेरा दिल इतना कच्चा नहीं है ? वह पहले भले आपके चकमे में आया हुआ मालूम पड़े, परन्तु पीछे वह आपको भी लेकर लौट आयेगा । मुझे उस पर पूरा यकीन है । यही तो कारण है कि मैं आपको न ढूँढकर अपने दिल को ही ढूँढता हूँ ।

साधक पुरुष अपने दिल को हर समय ढूँढता रहता है । इस विरह के गहरे दुःख में कहीं वह आराम की साँस लेना न चाहने लग जाय, आनन्द में डूब न जाय, प्रियतम का ध्यान करते-करते अभेदवादी के समान अपनेको प्रियतम न मान बैठे । जैसे किसी को एक काम पर नियुक्त करके उसके पीछे एक और खुफिया लगा दिया जाता है कि वह अपना काम पूरा करता

है या नहीं, वैसे ही जब दिल प्रियतम को ढूँढने लगता है तब प्रेमी लोग उस पर पैनी निगाह रखते हैं कि कहीं गोता न खा जाय । प्रेमोन्मादिनीं गोपियों तक को तो यह भय लगा रहता है कि कहीं हम भ्रमर-कीट की भाँति प्रियतम न हो जायँ, यही साधक का दिल को ढूँढना है ।’